प्राचीन भारतीय इतिहास में महिलाओं के शास्त्र एवं शस्त्र विषयक अधिकार: ऐतिहासिक परिदृश्य, मिथक और यथार्थ

डॉ० प्रदीप सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास,पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, टी० डी० पी० जी० कॉलेज, जौनपुर, उत्तर प्रदेश |
सम्बद्ध- वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर,

शोध सारांश
प्रस्तुत शोध पत्र प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना के अंतर्गत महिलाओं के बौद्धिक अधिकार अर्थात 'शास्त्र' तथा सैन्य एवं प्रशासनिक अधिकार अर्थात 'शस्त्र' से जुड़े ऐतिहासिक परिदृश्यों का एक वस्तुनिष्ठ और आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है| इतिहास लेखन की समकालीन धाराओं में प्राचीन भारतीय नारी की स्थिति को लेकर दो अतिवादी दृष्टिकोण सदैव हावी रहे हैं| प्रथम दृष्टिकोण औपनिवेशिक इतिहास चेतना से ग्रस्त है, जो भारतीय परंपरा को जन्मजात स्त्री-विरोधी और रूढ़िवादी सिद्ध करने के प्रयास में नारी को सर्वथा अधिकार-विहीन और पीड़ित दिखाता है| इसके विपरीत, द्वितीय दृष्टिकोण राष्ट्रवादी भावुकता से संचालित है, जो किसी ऐतिहासिक निरन्तरता को देखे बिना अतीत को एक निष्कलंक स्वर्ण युग के रूप में चित्रित कर देता है जहाँ हर नारी पूजनीय विदुषी या अदम्य वीरांगना थी| यह शोध पत्र इन दोनों ही अतिवादी सीमाओं अर्थात ऐतिहासिक मिथकों की तार्किक परीक्षा करते हुए मूल साहित्यिक, दार्शनिक और पुरातात्विक साक्ष्यों की सहायता से व्यावहारिक धरातल के वास्तविक यथार्थ को उद्घाटित करता है| वैदिक युग की दार्शनिक ऋषिकाओं के शास्त्रार्थों से लेकर उत्तर-वैदिक तथा स्मृति काल तक आते-आते सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक संबंधों में जो जटिलता आई, उसने महिलाओं के इन दोनों अधिकारों को किस प्रकार प्रभावित किया, यह आलेख उसका सूक्ष्म अनुशीलन करता है| मौर्य साम्राज्य की महिला अंगरक्षकों, वाकाटक राजवंश की संप्रभु रानी प्रभावती गुप्ता तथा चालुक्य राजकुमारियों के सैन्य नेतृत्व जैसे पुरातात्विक साक्ष्यों का विश्लेषण करते हुए यह आलेख प्रमाणित करता है कि प्राचीन भारत में महिलाओं के पास ज्ञान और संप्रभुता दोनों ही क्षेत्रों में हस्तक्षेप के वैध अधिकार उपलब्ध थे| अंततः यह शोध रेखांकित करता है कि कालक्रम में पितृसत्तात्मक संस्थाओं के सुदृढ़ होने तथा विदेशी आक्रमणों जनित सामाजिक असुरक्षा के कारण इन अधिकारों में जो क्रमिक संकुचन आया, वह कोई अचानक हुई घटना नहीं बल्कि एक ऐतिहासिक संक्रमण का परिणाम था|

बीज शब्द: प्राचीन भारत, शास्त्र, शस्त्र, वीरांगना, विदुषी, वैदिक काल, स्मृतियां, नारी अधिकार| किसी भी समाज या सभ्यता की आंतरिक परिपक्वता, उसकी न्यायप्रियता और उसके दार्शनिक उत्कर्ष का सबसे प्रामाणिक मापदंड यह होता है कि उसने अपने समाज के आधे हिस्से अर्थात स्त्री को वैचारिक विमर्श (शास्त्र) और संप्रभु शक्ति (शस्त्र) के प्रयोग की कितनी व्यावहारिक स्वतंत्रता प्रदान की है| प्राचीन भारतीय वांग्मय का यदि सूक्ष्म अध्ययन किया जाए, तो यह तथ्य अत्यंत विस्मयकारी है कि ज्ञान और शक्ति जैसे अमूर्त सिद्धांतों को पुरुषवाची रूपों में देखने के बजाय स्त्री रूप में ही कल्पित किया गया है| मार्कण्डेय पुराण का यह सुप्रसिद्ध उद्घोष समाज की इसी दार्शनिक चेतना को अभिव्यक्त करता है:
"विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु|
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥"1
परंतु दार्शनिक धरातल के इस उदात्त आदर और इतिहास के व्यावहारिक धरातल के कठोर यथार्थ में एक गहरा अंतर दिखाई देता है, जिसे समझे बिना हम किसी तार्किक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते| इतिहास लेखन में यह विषय लंबे समय से विमर्श का केंद्र रहा है कि क्या प्राचीन भारत की स्त्रियाँ केवल घरेलू श्रम और चारदीवारी तक ही सीमित थीं,

या वे सार्वजनिक बौद्धिक विमर्शों, राज्य संचालन और आवश्यकता पड़ने पर युद्ध भूमि में भी सक्रिय भूमिका निभा रही थीं। एक निष्पक्ष इतिहासकार के रूप में हमारा यह प्राथमिक दायित्व बनता है कि हम इन दोनों सीमाओं के मध्य स्थित उस व्यावहारिक यथार्थ को खंगालें, जो मूल ग्रंथों के साक्ष्यों में बिखरा पड़ा है।

जब हम 'शास्त्र' अर्थात ज्ञान और शिक्षा के अधिकार की बात करते हैं, तो वैदिक काल इस दिशा में एक अत्यंत प्रगतिशील समाज का परिदृश्य प्रस्तुत करता है। उस युग में ज्ञान की दीक्षा का प्रतीक माना जाने वाला 'उपनयन संस्कार' केवल बालकों तक सीमित नहीं था, बल्कि बालिकाओं के लिए भी उतना ही अनिवार्य और स्वाभाविक था। यमस्मृति का यह विधान इस ऐतिहासिक सत्य की पुष्टि करता है:

"पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा॥"2

इस व्यवस्था के अंतर्गत वेद-अध्ययन करने वाली स्त्रियों को उनकी रुचि और जीवन-दृष्टि के आधार पर दो स्पष्ट श्रेणियों में विभाजित किया गया था—प्रथम 'सद्योवधू', जो विवाह की आयु होने तक नियमपूर्वक शिक्षा प्राप्त करती थीं, और द्वितीय 'ब्रह्मवादिनी', जो गृहस्थ जीवन के बंधनों से मुक्त रहकर आजीवन वेदों के गहन अध्ययन, दर्शन और तत्वमीमांसा के अनुसंधान में लीन रहती हैं।3 यह विभाजन दर्शाता है कि समाज में स्त्री के बौद्धिक अस्तित्व को केवल एक पारिवारिक इकाई के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र विचारक के रूप में भी मान्यता प्राप्त थी।4

वैदिक और उपनिषदिक काल की ये स्त्रियाँ केवल ग्रंथों की मूक पाठक या श्रोता नहीं थीं, बल्कि वे स्वयं मंत्रों की द्रष्टा और ऋषि पद पर प्रतिष्ठित थीं। ऋग्वेद के विभिन्न मण्डलों में लगभग 27 ऋषिकाओं के नामों और उनके द्वारा रचित सूक्तों का उल्लेख मिलता है, जिनमें अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा और सिकता के सूक्त उनके उच्च बौद्धिक स्तर की गवाही देते हैं। उपनिषद काल में वैचारिक विमर्श की यह पराकाष्ठा 'बृहदारण्य उपनिषद' के उस ऐतिहासिक प्रसंग में अपनी पूरी भव्यता के साथ प्रकट होती है, जहाँ महाराजा जनक की अत्यंत प्रतिष्ठित दार्शनिक सभा में विदुषी गार्गी वाचक्नवी, तत्कालीन समाज के सबसे प्रकाण्ड विद्वान महर्षि याज्ञवल्क्य को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती देती हैं। गार्गी के प्रश्नों की तीक्ष्णता और उनकी निर्भीकता प्राचीन भारतीय नारी के बौद्धिक आत्मविश्वास का चरमोत्कर्ष है: "यथा काश्यो वा वैदेहो वोग्रपुत्र उज्ज्यं धनु रधिज्यं कृत्वा द्वौ बाणवन्तौ सपत्नातिव्याधिनौ हस्ते कृत्वोपोत्तिष्ठेदेवमेवाहं त्वा द्वाभ्यां प्रश्नाभ्यामुपोदस्थं तौ मे ब्रूहीति॥"5

इस अकादमिक चुनौती से स्पष्ट है कि ज्ञान के उच्चतम शिखरों पर स्त्रियों का हस्तक्षेप न केवल स्वीकार्य था, बल्कि पुरुष विद्वान भी उनके तर्कों के सम्मुख निरुत्तर होने के भय से मुक्त नहीं थे। इसी उपनिषद में याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी मैत्रेयी का संवाद भी दर्ज है, जो पति द्वारा दी जाने वाली सांसारिक और भौतिक संपत्ति को यह कहते हुए ठुकरा देती हैं कि "येनाहं नामृता स्यां किमसिं कुर्याम्" अर्थात जिससे मुझे शाश्वत ज्ञान या अमरता की प्राप्ति न हो, उस धन-संपदा का मैं क्या करूँ?6 यह जिज्ञासा किसी सामान्य लौकिक अधिकार की नहीं, बल्कि पारलौकिक और दार्शनिक सत्य को जानने के परम अधिकार की उद्घोषणा है।

यह गौरवशाली बौद्धिक परंपरा महाकाव्य काल अर्थात रामायण और महाभारत के युग तक किसी न किसी रूप में प्रवाहित होती रही। रामायण में महारानी कौशल्या और वानर राज सुग्रीव की पत्नी तारा द्वारा मन्त्रोच्चारण के साथ विशिष्ट वैदिक यज्ञ संपन्न करने के स्पष्ट संदर्भ मिलते हैं7 जो उनके धार्मिक और शास्त्रीय ज्ञान की प्रामाणिकता को सिद्ध करते हैं। इसी प्रकार, महाभारत के शांतिपर्व में सुलभा नामक संन्यासिनी का उपाख्यान आता है, जो योग और वेदांत के सिद्धांतों के बल पर राजा जनक की आत्मज्ञान विषयक धारणाओं की त्रुटियों को उजागर करती हैं और अपने अकाट्य तर्कों से राजसभा को चकित कर देती हैं।8

किंतु, इतिहास हमेशा एक रेखीय गति से आगे नहीं बढ़ता। जैसे-जैसे भारतीय समाज सूत्र काल और तदुपरान्त स्मृति काल की ओर बढ़ता है, सामाजिक संरचना में एक गहरा संक्रमण दिखाई देने लगता है। लगातार होने वाले बाहरी आक्रमणों, आंतरिक असुरक्षा, कबीलाई संघर्षों और श्रम-विभाजन के नए नियमों के कारण स्त्रियों की गतिशीलता को सीमित करने के प्रयास शुरू हुए। इसका सबसे पहला और घातक प्रहार उनके शिक्षा के अधिकार पर हुआ। स्मृतिकारों ने, जिनमें मनु अग्रणी थे, धीरे-धीरे बालिकाओं के उपनयन संस्कार को प्रतिबंधित कर दिया और विवाह को ही उनके लिए एकमात्र

अनिवार्य संस्कार घोषित कर दिया:
"वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया॥"9
इस एक वैधानिक परिवर्तन ने बहुसंख्यक महिलाओं को औपचारिक और शास्त्रीय शिक्षा से पूरी तरह विमुख कर दिया। ज्ञान का जो अधिकार कभी सहज और सार्वभौमिक था, वह अब संकुचित होकर केवल कुछ विशिष्ट कुलीन परिवारों तक सीमित रह गया।10 यद्यपि इस अंधकारमय युग में भी हमें अवंतिसुंदरी (प्रसिद्ध काव्य-मीमांसक राजशेखर की पत्नी) और भारती मिश्र (जिन्होंने आदि शंकराचार्य और मण्डन मिश्र के मध्य हुए ऐतिहासिक शास्त्रार्थ में मुख्य निर्णायक की भूमिका निभाई थी) जैसी विदुषियों के अपवाद स्वरूप उदाहरण मिलते हैं, परंतु वे पूरे समाज का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे, बल्कि व्यक्तिगत प्रतिभा और कुलीन पृष्ठभूमि का परिणाम थे।
जिस प्रकार 'शास्त्र' के क्षेत्र में स्त्रियों का योगदान ऐतिहासिक रूप से प्रमाणित है, ठीक उसी प्रकार 'शस्त्र' अर्थात सैन्य विधा और राजनैतिक संप्रभुता के धरातल पर भी उनका सामर्थ्य उपेक्षणीय नहीं रहा है। प्राचीन भारतीय समाज में, विशेषकर क्षत्रिय और शासक कुलों में, कन्याओं को आत्मरक्षा, अश्व-संचालन और अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा दी जाती थी। ऋग्वेद के युद्ध संबंधी सूक्तों में मुद्गलानी अर्थात इन्द्रसेना का अत्यंत जीवंत वृत्तांत मिलता है, जो केवल युद्ध की मूक साक्षी नहीं थीं, बल्कि रणक्षेत्र में अपने पति के रथ की बागडोर संभालते हुए शत्रुओं के व्यूह को छिन्न-भिन्न कर देती हैं।11 ऋग्वेद में उन्हें 'गविष्टि' अर्थात विजय की कामना से किए जाने वाले संघर्षों में अग्रगामी वीरांगना के रूप में चित्रित किया गया है।12 शस्त्र संचालन और सैन्य कौशल का इससे भी अधिक विस्मयकारी और तकनीकी रूप से उन्नत उदाहरण ऋग्वेद में वर्णित योद्धा स्त्री विष्पला के प्रसंग में मिलता है। एक भीषण युद्ध में शत्रु सेना द्वारा उनका पैर काट दिया जाता है, किंतु वे पराजय स्वीकार नहीं करतीं। तत्कालीन समाज के देव-भिषज अश्विन कुमारों द्वारा उन्हें लोहे का एक कृत्रिम पैर प्रदान किया जाता है, जिसके सहारे वे पुनः युद्ध भूमि में उतरकर शत्रुओं का संहार करती हैं:
"चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सरतवे प्रत्यधत्तम्॥"13
एक शोधार्थी के रूप में जब हम इस सूक्त का विश्लेषण करते हैं, तो यह न केवल महिलाओं की अदम्य युद्ध-इच्छाशक्ति को प्रमाणित करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि प्राचीन भारत में महिला सैनिकों की चिकित्सा, उनके पुनर्वास और उनके सैन्य महत्व को कितनी गंभीरता से लिया जाता था। महाकाव्य काल में कैकेयी द्वारा राजा दशरथ के साथ देवासुर संग्राम में भाग लेना और युद्ध भूमि में अत्यंत सूझबूझ से राजा के प्राणों की रक्षा करना, उनके इसी व्यावहारिक सैन्य प्रशिक्षण का प्रतिफल था।14
ऐतिहासिक युग में प्रवेश करते ही इन साहित्यिक साक्ष्यों की पुष्टि विदेशी विवरणों और पुरातात्विक प्रमाणों से भी होने लगती है। मौर्य साम्राज्य के प्रशासनिक तंत्र का बारीकी से अध्ययन करने वाले यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक में इस बात का विशेष उल्लेख किया है कि सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की आंतरिक सुरक्षा का दायित्व किसी पुरुष अंगरक्षक दल पर नहीं, बल्कि अत्यंत प्रशिक्षित और सशस्त्र महिला अंगरक्षकों के एक विशिष्ट दस्ते पर था, जो धनुष-बाण, तलवार और भाला संचालन में पुरुषों से भी अधिक निपुण थीं।15 आचार्य चाणक्य ने अपने ग्रंथ 'अर्थशास्त्र' में भी विभिन्न प्रशासनिक विभागों में 'स्त्री-अध्यक्षों' की नियुक्ति और राजा की गुप्त सुरक्षा में इन सशस्त्र नारियों के उपयोग का विस्तृत वैधानिक खाका खींचा है।16
शासन संचालन और राजनैतिक संप्रभुता की बात करें तो इतिहास गवाह है कि जब-जब पुरुषों के नेतृत्व में शून्यता या शिथिलता आई, महिलाओं ने अपनी प्रशासनिक और सैन्य क्षमता से साम्राज्य की रक्षा की। गुप्त काल की सर्वोच्च सत्ता से जुड़ी वाकाटक राजवंश की रानी प्रभावती गुप्ता ने अपने पति रुद्रसेन द्वितीय की असामयिक मृत्यु के पश्चात, अपने अल्पवयस्क पुत्रों की संरक्षिका के रूप में लगभग 20 वर्षों तक जिस दृढ़ता और कुशलता से शासन संभाला, वह उनके राजनैतिक चातुर्य का प्रमाण है17, उनके द्वारा जारी किए गए ताम्रपत्र शासन पर उनके पूर्ण और संप्रभु नियंत्रण को दर्शाते हैं। इसी प्रकार, कश्मीर के अत्यंत जटिल और षड्यंत्रकारी राजनैतिक वातावरण में रानी सुगन्धा और रानी दिद्दा ने न

केवल विद्रोहों को अपनी सैन्य शक्ति से कुचला, बल्कि वास्तविक शासक के रूप में सत्ता का उपभोग किया।18 प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व में सातवाहन वंश की महारानी नागनिका का प्रभाव इतना व्यापक था कि साम्राज्य के सिक्कों पर राजा के साथ उनकी छवि और नाम अंकित किया गया19, जो तत्कालीन राजनैतिक व्यवस्था में नारी की संप्रभु हिस्सेदारी को प्रमाणित करती है। कल्याणी के चालुक्य राजवंश में तो अक्कादेवी जैसी राजकुमारियों को उनकी प्रशासनिक और सैन्य कुशलता के कारण 'रणभैरवी' की उपाधि दी गई थी, जो बड़े प्रांतों की राज्यपाल के रूप में कर वसूलने से लेकर सेना का नेतृत्व करने तक के सभी संप्रभु कार्य स्वतः करती थीं।20

इन तमाम ऐतिहासिक तथ्यों के बावजूद, जब हम प्राचीन भारत में महिलाओं की वास्तविक स्थिति का निष्पक्ष मूल्यांकन करते हैं, तो हमें दो बड़े सामाजिक-सांस्कृतिक मिथकों का सामना करना पड़ता है जिनका खंडन करना इस शोध का मुख्य उद्देश्य है। पहला मिथक, जो यह प्रचारित करता है कि "प्राचीन भारत में महिलाएं सदैव एक दासी या गुलाम की तरह अधिकार-विहीन जीवन जीने के लिए अभिशप्त थीं", पूरी तरह एकांगी और पूर्वाग्रह से ग्रसित है। यदि सामाजिक व्यवस्था इतनी ही दमनकारी होती, तो गार्गी जैसी स्त्रियाँ राजसभाओं को चुनौती न दे पातीं और न ही प्रभावती गुप्ता जैसी रानियाँ स्वतंत्र राजकीय आदेश जारी कर पातीं ।21 साक्ष्य स्पष्ट करते हैं कि महिलाओं को, विशेषकर उच्च सामाजिक-आर्थिक कुलों में, शिक्षा, अपनी निजी संपत्ति अर्थात स्त्रीधन पर पूर्ण स्वामित्व, और विशिष्ट राजनैतिक परिस्थितियों में सर्वोच्च शासन का अधिकार प्राप्त था।22

किंतु इसके समानांतर, हमें उस दूसरे मिथक से भी सावधान रहना होगा जो राष्ट्रवादी उत्साह में "प्राचीन भारत को एक ऐसा आदर्श नारी-स्वर्ग" घोषित कर देता है जहाँ कोई लैंगिक भेदभाव नहीं था। यह एक रोमानी और अवैज्ञिकल सोच है।23 यथार्थ के धरातल पर अधिकार सदैव वर्ग-विशिष्ट और वर्ण-विशिष्ट रहे हैं। जो बौद्धिक और सैन्य स्वतंत्रता एक क्षत्रिय राजकुमारी या ब्राह्मण कुल की ब्रह्मवादिनी को सुलभ थी, वह समाज के अंतिम पायदान पर श्रम करने वाली शूद्र स्त्री को कभी प्राप्त नहीं हुई। वर्ग और जाति के समीकरणों ने महिला अधिकारों को सदैव नियंत्रित किया। इसके अतिरिक्त, स्मृति काल के परवर्ती ग्रंथों में पितृसत्तात्मक नियंत्रण और स्त्री की स्वायत्तता पर अंकुश लगाने की प्रवृत्ति लगातार उग्र होती गई। मनुस्मृति का यह बहु-चर्चित श्लोक इसी सुरक्षात्मक किंतु नियंत्रक मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है: "पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थाविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥"24

यद्यपि कई आधुनिक विश्लेषक इस श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि यहाँ 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति' का अर्थ स्त्री को परतंत्र बनाना नहीं, बल्कि उसे जीवन के हर चरण में सामाजिक असुरक्षा से बचाना अर्थात 'सुरक्षा का उत्तरदायित्व' है। किंतु व्यावहारिक यथार्थ यही रहा कि इस सुरक्षात्मक दृष्टिकोण ने धीरे-धीरे महिलाओं की सामाजिक गतिशीलता, उनकी निर्णय लेने की क्षमता और उनकी वैचारिक स्वतंत्रता को पूरी तरह सीमित कर दिया।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय इतिहास के इस दीर्घकालिक और बहुआयामी अनुशीलन से यह अकादमिक निष्कर्ष अत्यंत स्पष्टता के साथ उभरता है कि महिलाओं के शास्त्र और शस्त्र विषयक अधिकार कोई कपोल-कल्पित मिथक नहीं थे, बल्कि वे ठोस ऐतिहासिक यथार्थ की भूमि पर टिके हुए थे। वैदिक युग जहां आत्मिक, दार्शनिक और शास्त्रीय धरातल पर स्त्री अस्मिता और उसकी मेधा के चरमोत्कर्ष का कालखंड था, वहीं मौर्य, सातवाहन, वाकाटक और चालुक्य कालखंड उनके राजनैतिक सामर्थ्य, प्रशासनिक सूझबूझ और शस्त्र-विषयक संप्रभुता के प्रत्यक्ष गवाह बने।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि कालक्रम के बदलते चक्रों, निरंतर होने वाले बाहरी आक्रमणों, आंतरिक सामाजिक रूढ़ियों के सुदृढ़ीकरण और स्मृतिकारों द्वारा निर्मित किए गए कठोर नियमों के कारण महिलाओं के इन व्यापक अधिकारों में एक क्रमिक और दुखद ह्रास हुआ। जब समाज ने उनकी ज्ञान की दीक्षा अर्थात उपनयन पर प्रतिबंध लगाया, तो उनके हाथ से 'शास्त्र' छूट गया; और जब सुरक्षा के नाम पर उन्हें घरेलू घेरों में बंद किया गया, तो उनके हाथ से 'शस्त्र' और शासन की बागडोर भी छिन गई। इसके बावजूद, भारतीय इतिहास की अंतर्धारा पूरी तरह कभी अवरुद्ध नहीं हुई।गार्गी, विष्पला और प्रभावती गुप्ता जैसी ऐतिहासिक विभूतियों ने जो मशाल जलाई थी,

उसकी लौ उपचेतना में हमेशा जलती रही, जिसने परवर्ती काल और आधुनिक युग में नारी चेतना के पुनरुत्थान और उनके अधिकारों की पुनर्प्राप्ति के संघर्ष का मार्ग प्रशस्त किया। प्राचीन भारत का यथार्थ अत्यंत जटिल और विविधतापूर्ण था, जिसे किसी एक पूर्वाग्रह से ग्रसित चश्मे से नहीं, बल्कि साक्ष्यों की वस्तुनिष्ठता के साथ ही समझा जा सकता है।

सन्दर्भ-

मार्कण्डेय पुराण. (2020). दुर्गासप्तशती (अध्याय 11, श्लोक 6, पृ. 245). गीताप्रेस.

यमस्मृति. (1914). वीरमित्रोदय: संस्कारप्रकाश: (भाग 1, पृ. 402). चौखम्बा संस्कृत सीरीज़.

उपाध्याय, भ. (1950). ऋग्वेद में स्त्रियाँ (पृ. 45-48). नंदकिशोर एंड ब्रदर्स.

काणे, पा. व. (1941). धर्मशास्त्र का इतिहास (खण्ड 2, पृ. 320-322). भंडारक ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट.

बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय 3, ब्राह्मण 8, मन्त्र 2, पृ. 182). (2015). गीताप्रेस.

बृहदारण्यकोपनिषद् (अध्याय 4, ब्राह्मण 5, मन्त्र 4, पृ. 295). (2015). गीताप्रेस.

वाल्मीकि. (2012). श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (अयोध्याकाण्ड, अध्याय 20, श्लोक 15, पृ. 340). गीताप्रेस.

वेदव्यास. (2018). महाभारत (शान्तिपर्व, अध्याय 320, श्लोक 10-45, पृ. 4810). गीताप्रेस.

मनुस्मृति. (2010). मनुस्मृति: कुल्लूकभट्ट कृत 'मन्वर्थमुक्तावली' टीका सहित (अध्याय 2, श्लोक 67, पृ. 54). चौखम्बा विद्याभवन.

अलतेकर, अ. स. (1938). हिन्दू सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति (पृ. 120-125). द कल्चर पब्लिकेशन हाउस.

ऋग्वेद संहिता (मण्डल 10, सूक्त 102, मुद्गल सूक्त, मन्त्र 2, पृ. 890). (2018). गीताप्रेस.

शास्त्री, त्रि. (1985). रामायणकालीन समाज (पृ. 98). लोकभारती प्रकाशन.

ऋग्वेद संहिता (मण्डल 1, सूक्त 116, मन्त्र 15, पृ. 215). (2018). गीताप्रेस.

अलतेकर, अ. स. (1938). हिन्दू सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति (पृ. 140-142). द कल्चर पब्लिकेशन हाउस.

मेगस्थनीज. (1926). इण्डिका (ज. व्दू. मैकक्रिंडल, अनुवा.; पृ. 72-74). चक्रवर्ती, चटर्जी एंड कंपनी.

कौटिल्य. (2014). अर्थशास्त्र (वा. गा. कांगले, अनुवा.; भाग 2, पृ. 145-148). मोतीलाल बनारसीदास.

शर्मा, रा. (2001). प्राचीन भारत में सामाजिक परिवर्तन (पृ. 162-165). राजकमल प्रकाशन.

कलहण. (1990). राजतरंगिणी (रा. ते. शास्त्री, अनुवा.; तरंग 6, पृ. 210-214). साहनी प्रकाशन.

शास्त्री, क. अ. (1955). दक्षिण भारत का इतिहास (पृ. 112-115). ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

अलतेकर, अ. स. (1938). हिन्दू सभ्यता में स्त्रियों की स्थिति (पृ. 185-188). द कल्चर पब्लिकेशन हाउस.

थारपर, रो. (2013). हमारे सामने अतीत: दक्षिण एशिया की ऐतिहासिक परंपराएं (पृ. 230-235). हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

जायसवाल, सु. (2001). भारत में जाति की उत्पत्ति और विकास (पृ. 188-192). मुंशीराम मनोहरलाल.

चक्रवर्ती, उ. (1993). प्रारंभिक भारत में ब्राह्मणवादी पितृसत्ता की अवधारणा. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 28 (14), 579-585.

मनुस्मृति. (2010). मनुस्मृति: कुल्लूकभट्ट कृत 'मन्वर्थमुक्तावली' टीका सहित (अध्याय 9, श्लोक 3, पृ. 385). चौखम्बा विद्याभवन.